फिल्मों को विलम्ब से प्रमाणपत्र दिए जाने पर उठे सवाल

सन्दर्भ

पहली बार फिल्म सेंसरशिप के मुद्दे को उठाते हुए, कांग्रेस नेता के वी थॉमस की अध्यक्षता वाली लोक लेखा समिति ने फ़िल्म प्रमाणन बोर्ड द्वारा फिल्मों को देर से प्रमाण-पत्र दिये जाने के मुद्दे पर चिंता जताई है और केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड द्वारा फिल्मों को प्रमाण-पत्र देने की प्रक्रिया को विसंगतियों से युक्त बताया है|

महत्त्वपूर्ण बिंदु

- लोक लेखा समिति ने केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड की आलोचना करते हुए कहा है कि फिल्मों को प्रमाण-पत्र देने में 491 दिनों तक की देरी बोर्ड की सुस्ती है, यह धनोपार्जन की एक सोची समझी व्यवस्था है|
- विदित हो कि लोक लेखा समिति ने इस समूची प्रक्रिया को दोषयुक्त बताते हुए सिनेमेटोग्राफ अधिनियम, 1952 और सिनेमेटोग्राफ प्रमाणन नियम, 1983 में संशोधन का सुझाव दिया है|
- गौरतलब है कि लोक लेखा समिति "केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड के कार्यों पर " कैग द्वारा दी गई एक रिपोर्ट के आधार पर जाँच कर रही है ।
- सिनेमेटोग्राफ अधिनियम 1952 और सिनेमेटोग्राफ प्रमाणन नियम 1983 में संशोधन आवश्यक क्यों?
- जाहिर सी बात है कि जब ये नियम बनाए गए थे तब तकनीक का विकास आज के स्तर नहीं था| आज समाज के नज़रिये में भी व्यापक बदलाव आया है, अतः दशकों पहले बनाए गए इन नियमों के आधार पर आज के सिनेमा को परखना कतई प्रासंगिक नहीं है|
- केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड की कार्य क्षमता पर सवाल उठना आश्चर्यजनक नहीं है| वस्तुतः फिल्में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती हैं और सत्तारूढ़ दल प्रायः सेंसर बोर्ड में ऐसे सदस्यों की नियुक्ति करते हैं जो उन्हें अनुचित लाभ पहुँचा सकें| इसका नतीज़ा यह होता है कि समाज के अनुचित नज़रिये को चुनौती देने वाली प्रगतिशील फिल्मों को फिल्म प्रमाणन के पचड़ों में फँसा दिया जाता है| अतः सिनेमेटोग्राफ अधिनियम, 1952 और सिनेमेटोग्राफ प्रमाणन नियम, 1983 में संशोधन आवश्यक हैं ताकि बोर्ड के कार्यों में पारदर्शिता बहाल की जा सके|

निष्कर्ष

- यह कहना गलत नहीं होगा कि एक फिल्म निर्माता की सारी मेहनत महज़ केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन नामक एक संस्था के हाथों में होती है| हालाँकि, फिल्मों का सेंसर होना ज़रूरी भी है, क्योंकि जहाँ भारत का संविधान अभिव्यक्ति की आज़ादी देता है, वहीं अभिव्यक्ति पर उचित प्रतिबंध की भी बात करता है| सेंसर बोर्ड को इस बात पर पूरा ध्यान देना होता है कि फिल्मों के ज़रिये लोगों तक ऐसा कोई भी संदेश न पहुँचे जिससे देश की शांति भंग हो|
- हालाँकि, यह सच है कि संविधान सरकार को अनुच्छेद 19 (1)(क) में दी गई अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को राष्ट्रीय सुरक्षा से लेकर मित्र देशों के साथ संबंध बिगड़ने की आशंका तक कई आधारों पर सीमित करने की इजाज़त देता है, लेकिन यह आशंका किसी फिल्म से पैदा हो सकती है या नहीं, यह तय करने का सबसे श्रेष्ठ आधार कोई फिल्म प्रमाणन संस्था नहीं हो सकती| यह काम राज्य सरकारों पर छोड़ा जा सकता है जो लोगों और उनके प्रतिनिधियों के प्रति कहीं सीधे तौर पर जवाबदेह होती हैं|
- केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड को सेंसरशिप या पुलिस का काम करने की बजाय अपना काम यहीं तक सीमित रखना चाहिये कि कौन सी फिल्म किस दर्शक वर्ग के लिये ठीक है| इसके अलावा, आदर्श स्थिति यह होगी कि प्रमाणन संस्था का नेतृत्व किसी ऐसे व्यक्ति के हाथों में होना चाहिये जिसकी सिनेमा या कला के दूसरे माध्यमों से जुड़े लोगों के बीच कुछ प्रतिष्ठा हो| फिल्में सही मायने में समाज का दर्पण तभी बन पाएंगी जब प्रमाणन संस्था को राजनीति से प्रेरित नियुक्तियों और भेदभाव से निज़ात मिलेगी|

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/when-questions-arose-late-movies-certificate